

शास्त्रं संपठति स्मोच्चैः काले काले तथान्यदा । तं पठन्तं जिनैः प्रोक्तं स्वागमं मुनिसत्तमम् ॥८॥
दृष्ट्वासौ देवता तुष्टा विशुद्धाष्टविधार्चनैः । पूजयामास सद्भक्त्या सद्गुणैः को न पूजितः ॥९॥
ततोसौ वीरभद्रस्तु मुनीन्द्रो ज्ञानमण्डितः । दर्शनज्ञानचारित्रैः परलोकं सुधीर्गतः ॥१०॥

तस्माच्छ्रीजिनभाषितं शुभतरं ज्ञानं जगन्मोहनं
नित्यं सारविभूतिशर्मजनकं स्वर्गापवर्गप्रदम् ।
युक्ता भक्तिभरेण निर्मलधियो विश्वप्रदीपं हितं
श्रित्वा शोककलंकपङ्कहरणं कुर्वन्तु सन्तः सुखम् ॥११॥

इति कथाकोशे कालाध्ययनाख्यानं समाप्तम् ।

८८. अकालाध्ययनाख्यानम्

नत्वा जिनं जगद्वन्द्यं केवलज्ञानलोचनम् । अकालाख्यानकं वक्ष्ये सतां सम्बोधहेतवे ॥१॥
शिवनन्दी मुनिः कश्चिदेकदा गुरुवाक्यतः । श्रीमच्छ्रवणनक्षत्रोदये स्वाध्यायकालकः ॥२॥

सबेरा होने पर वे अपने गुरु महाराज के पास गए और अपनी इस क्रिया की आलोचना कर उनसे उन्होंने प्रायश्चित्त लिया। तब से वे शास्त्राभ्यास का जो काल है उसी में पठन-पाठन करने लगे। उन्हें अपनी गलती का सुधार किए देखकर देवी उनसे बहुत खुश हुई। बड़ी भक्ति से उसने उनकी पूजा की। सच है, गुणवानों की सभी पूजा करते हैं ॥७-९॥

इस प्रकार दर्शन, ज्ञान और चारित्र का यथार्थ पालन कर वीरभद्र मुनिराज अन्त समय में धर्म-ध्यान से मृत्यु लाभ कर स्वर्गधाम सिधारे ॥१०॥

भव्यजनों को भी उचित है कि वे जिन भगवान् के उपदेश किए, संसार को अपनी महत्ता से मुग्ध करने वाले, स्वर्ग या मोक्ष की सर्वोच्च सम्पदा को देने वाले, दुःख, शोक, कलंक आदि आत्मा पर लगे हुए कीचड़ को धो-देने वाले, संसार के पदार्थों का ज्ञान कराने में दीये की तरह काम देने वाले और सब प्रकार के सांसारिक सुख के आनुषंगिक कारण ऐसे पवित्र ज्ञान को भक्ति से प्राप्त कर मोक्ष का अविनाशी सुख लाभ करें ॥११॥

८८. अकाल में शास्त्राभ्यास करने वाले की कथा

संसार द्वारा पूजे जाने वाले और केवलज्ञान जिनका प्रकाशमान नेत्र है, ऐसे जिन भगवान् को नमस्कार कर असमय में जो शास्त्राभ्यास के लिए योग्य नहीं है, शास्त्राभ्यास करने से जिन्हें उसका बुरा फल भोगना पड़ा, उनकी कथा लिखी जाती है। इसलिए कि विचारशीलों को इस बात का ज्ञान हो कि असमय में शास्त्राभ्यास करना अच्छा नहीं है, उसका बुरा फल होता है ॥१॥

शिवनन्दी मुनि ने अपने गुरु द्वारा यद्यपि यह ज्ञान रखा था कि स्वाध्याय का समय-काल श्रवण नक्षत्र का उदय होने के बाद माना गया है, तथापि कर्मों के तीव्र उदय से वे अकाल में ही

भवत्येवं परिज्ञात्वा तथापि प्रौढकर्मतः। अकाले संपठन्मिथ्या-समाधिमरणेन सः ॥३॥
 गंगानद्यां महामस्यः संजातः पापकर्मणा। जिनाज्ञालोपनेनैवं प्राणी दुर्गतिभागभवेत् ॥४॥
 ततश्चैकदिने सोपि मत्स्यस्तु पुलिने शुभे। साधुपाठं समाकर्ण्य भूत्वा जातिस्मरोभवत् ॥५॥
 अहो पठितमूर्खोहं जैनवाक्यपराङ्मुखः। संजातः पापतो मत्स्यो दुष्टकर्मविधायकः ॥६॥
 इत्यात्मनिन्दनं कृत्वा गृहीत्वा त्रिजगद्धितम्। सम्यक्त्वं भक्तिभारेण संयुक्तः सदणुव्रतैः ॥७॥
 समाराध्य जिनेन्द्रस्य पादपद्मद्वयं मुदा। स्वर्गे महर्धिको जातो देवः सत्पुण्यसम्बलः ॥८॥
 धर्मस्याराधकः स्वर्गी भवेत्पापी विराधकः। पूर्वोसौ सत्सुखोपेतः परो दुःखाश्रितो जनः ॥९॥
 इति ज्ञात्वा बुधैर्नित्यं धर्मः श्रीजिनभाषितः। आराध्यो भक्तितो नित्यं शक्त्या शर्मशतप्रदः ॥१०॥
 विमलतरविभूतिः प्राणिनां शुद्धकीर्तिं भवति विशदमूर्तिर्ज्ञानतश्चारुशान्तिः।
 असुरसुरनरेन्द्रैः खेचरेन्द्रैः प्रपूज्यं जिनपतिवरबोधं संभजन्तु प्रभव्याः ॥११॥
 इति कथाकोशे अकालाध्ययनाख्यानं समाप्तम्।

शास्त्राभ्यास किया करते थे। फल इसका यह हुआ कि मिथ्या समाधिमरण द्वारा मरकर उन्होंने गंगा में एक बड़े भारी मच्छ की पर्याय धारण की। सो ठीक ही है जिन भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन करने से इस जीव को दुर्गति के दुःख भोगने ही पड़ते हैं ॥२-४॥

एक दिन नदी किनारे पर एक मुनि शास्त्राभ्यास कर रहे थे। इस मच्छ ने उनके पाठ को सुन लिया। उससे उसे जातिस्मरण हो गया। तब उसने इस बात का बहुत पछतावा किया कि हाय! मैं पढ़कर भी मूर्ख बना रहा, जो जैनधर्म से विमुख होकर मैंने पापकर्म बाँधा। उसी का यह फल है, जो मुझे मच्छ-शरीर लेना पड़ा। इस प्रकार अपनी निन्दा और अपने पापकर्म की आलोचना कर उसने भक्ति से सम्यक्त्व ग्रहण किया, जो कि सब जीवों का हित करने वाला है। इसके बाद वह जिन भगवान् की आराधना कर पुण्य के उदय से स्वर्ग में महर्द्विक देव हुआ। सच है, मनुष्य धर्म की आराधना कर स्वर्ग जाता है और पापी धर्म से उल्टा चलकर दुर्गति में जाता है। पहला सुख भोगता है और दूसरा दुःख उठाता है। यह जानकर बुद्धिमानों को उचित है, उनका कर्तव्य है कि वे जिनेन्द्र भगवान् के उपदेश किए धर्म की भक्ति से अपनी शक्ति के अनुसार आराधना करें, जो कि सब सुखों का देने वाला है ॥५-१०॥

सम्यग्ज्ञान जिसने प्राप्त कर लिया उसकी सारे संसार में कीर्ति होती है, सब प्रकार की उत्तम-उत्तम सम्पदाएँ उसे प्राप्त होती है, शान्ति मिलती है और वह पवित्रता की साक्षात्प्रतिमा बन जाता है। इसलिए भव्यजनों को उचित है कि वे जिन भगवान् के पवित्र ज्ञान को, जो कि देवों और विद्याधरों द्वारा पूजा-माना जाता है, प्राप्त करने का यत्न करें ॥११॥

८९. विनयाख्यानम्

सर्व-देवेन्द्रनागेन्द्र-नरेन्द्राद्यैः समर्चितम्। नत्वा जिनं प्रवक्ष्येहं विनयाख्यानकं शुभम् ॥१॥
 वत्सदेशे सुविख्याते कौशाम्बीपत्तने शुभे। राजाभूद्धनसेनाख्यो विष्णुभक्तो विमुग्धधीः ॥२॥
 धनश्रीः श्रीरिवात्यन्तसुन्दरा तस्य कामिनी। श्रीजिनेन्द्रपदाम्भोजसद्भृङ्गी श्राविकोत्तमा ॥३॥
 सुप्रतिष्ठाभिधस्तत्र पुरे भागवतस्तथा। तद्राजाग्रासने भुङ्क्ते भोजनं कुतपोव्रतः ॥४॥
 स जलस्तंभिनीविद्या-सामर्थ्येन प्रपंचतः। यमुनाख्यामहानद्यामध्ये जापं करोति च ॥५॥
 तत्प्रभावं समालोक्य सर्वे मूढजनास्तदा। संप्राप्ता विस्मयं युक्तं मूढा मूढक्रियारतः ॥६॥
 अथ श्रीविजयार्थस्य दक्षिणश्रेणिसंस्थिते। रथनूपुरचक्रादिबालाख्ये पत्तनेऽभवत् ॥७॥
 राजा विद्युत्प्रभः ख्यातः श्रावकव्रतमण्डितः। विद्युद्वेगा महाराज्ञी विष्णुभक्ता बभूव च ॥८॥
 एकदा तौ विनोदेन कौशाम्बीमागतौ पुरीम्। माघमासे जलस्नानं नद्यां जापं जलोपरि ॥९॥
 कुर्वन्तं सुप्रतिष्ठन्तं मिथ्यात्वविषदूषितम्। विद्युद्वेगा विलोक्योच्चै-स्तत्प्रशंसां चकार सा ॥१०॥

८९. विनयी पुरुष की कथा

इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों द्वारा पूजे जाने वाले जिन भगवान् को नमस्कार कर विनयधर्म के पालने वाले मनुष्य की पवित्र कथा लिखी जाती है ॥१॥

वत्सदेश में सुप्रसिद्ध कौशाम्बी के राजा धनसेन वैष्णव धर्म के मानने वाले थे। उनकी रानी धनश्री, जो बहुत सुन्दरी और विदुषी थी, जिनधर्म पालती थी। उसने श्रावकों के व्रत ले रखे थे। यहाँ सुप्रतिष्ठ नाम का एक वैष्णव साधु रहता था। राजा इसका बड़ा आदर-सत्कार कराते थे और यही कारण था कि राजा इसे स्वयं ऊँचे आसन पर बैठाकर भोजन कराते थे। इसके पास एक जलस्तंभिनी नाम की विद्या थी। उससे यह बीच यमुना में खड़ा रहकर ईश्वराराधना किया करता था, पर डूबता न था। इसके ऐसे प्रभाव को देखकर मूढ़ लोग बड़े चकित होते थे। सो ठीक ही है मूर्खों को ऐसी मूर्खता की क्रियाएँ पसन्द हुआ ही करती है ॥२-६॥

विजयार्थ पर्वत की दक्षिण श्रेणी में बसे हुए रथनूपुर के राजा विद्युत्प्रभ जैनी थे, श्रावकों के व्रतों के पालने वाले थे और उनकी रानी विद्युद्वेगा वैष्णव धर्म की मानने वाली थी। सो एक दिन ये राजा-रानी प्रकृति की सुन्दरता देखते और अपने मन को बहलाते कौशाम्बी की ओर नदी-किनारे आ गए। वहाँ पहुँच कर देखा कि एक साधु यमुना में खड़ा रहकर तपस्या कर रहा है। विद्युत्प्रभ ने सुप्रतिष्ठ को जल में खड़ा देख उसने जान लिया कि यह मिथ्यादृष्टि है। पर उनकी रानी विद्युद्वेगा ने उस साधु की बहुत प्रशंसा की। विद्युत्प्रभ ने रानी से कहा यह कोई मिथ्यादृष्टि है जो लोगों को ठग रहा है। रानी ने कहा नहीं है एक बड़ा साधु है तब विद्युत्प्रभ ने रानी से कहा-अच्छी बात है, प्रिये, आओ तो मैं तुम्हें जरा इसकी मूर्खता बतलाता हूँ। इसके बाद ये दोनों चाण्डाल का